

संत दादूदयाल के काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता

*डॉ. सुकर्मवती देवी

मनुष्य और साहित्य का अटूट सम्बन्ध है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है। दूसरी ओर साहित्य में भी ऐसी प्रबल शक्ति होती है कि वह समाज को भी बदल सकती है। प्रासंगिकता वर्तमान के सन्दर्भ में अतीत की जांच और उसका मूल्यांकन है। प्रासंगिकता साहित्य को वर्तमान के संदर्भ में प्रतिफलित होने का सामर्थ्य देती है। कोई कवि अपने समय में और समय के अन्तराल में कितनी दूरी तक उपयोगी सिद्ध होता है यही उसकी विशिष्टता का मानदण्ड है। यह ठीक है कि श्रेष्ठ कवि जितना अधिक वर्तमान में जीता है उससे कहीं अधिक भविष्य में जीता है। विशिष्ट प्रतिभाशाली कवि युग चित्रकार के साथ ही युगान्तकारी भी हुआ करते हैं। दादू जी ने जो चेतावनियाँ दी हैं वे समाज के लिए सदैव कल्याणकारी हैं क्योंकि उनकी अनुभूति के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें 20वीं शताब्दी का सचेत नागरिक भी अनुभव करता है।

मध्ययुग में समाज की जिन परिस्थितियों में दादू जी का पोषण हुआ तथा जिन सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों, अन्धविश्वासों का उन्हें सामाना करना पड़ा वे एक और तो इनके व्यक्तित्व को सबल बनाने में सहायक हुईं, दूसरी ओर इन्होंने परिस्थितियों को बदलने का भरसक प्रयत्न किया। इन्होंने अंधविश्वासों पर प्रहार किये, रुढ़िवाद का खंडन किया बाह्यचार को व्यर्थ सिद्ध किया और मानव-जीवन में एकता तथा बंधुत्व की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। साहित्य को हम समाज का परिधान कह सकते हैं जो जनता के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद तथा आकर्षण-विकर्षण के ताने-बाने से बुना जाता है। डॉ. दशरथ ओझा के मतानुसार—“वास्तव में साहित्य तो साहित्यकारों के पूंजीभूत संस्कारों और अनुभवों की अभिव्यक्ति ही है।”¹

कवि अपने कर्म द्वारा समाज को नई दिशा देते हैं। डॉ. गुलाबराय के शब्दों में—“समाज कवि एवं लेखकों को बनाता है और लेखक और कवि समाज का निर्माण करते हैं। कवि की बनाई हुई सामाजिक भावों की आदर्श मूर्ति समाज की उन्नायिका बन जाती है।”²

तत्कालीन समय में केन्द्रीय सत्ता के अत्याचारों से हिन्दू जनता पस्त हो चली थी। हिन्दू राजाओं में एकता का अभाव था जिससे उनकी नींव की चूले हिल गईं। उस जाति में भी ऊँच-नीच, छुआछूत का भेदभाव, जातीय बन्धन की दृढ़ता घर करती चली गई। हिन्दू और मुस्लिम जनता दोनों ही अज्ञान और कुसंस्कारों का बोझ ढो रही थी। वह रुढ़ियों एवं अन्धविश्वास की मानसिक ग्रन्थियों में आबद्ध थी। जातीय भेद की गहराई और सामाजिक बन्धनों की कठोरता से समाज में जड़ता-सी व्याप्त हो रही थी, झूठ, फरेब और धूर्तता सफलता के सोपान बनने लगे ... इस यथार्थ को दादू की संत आंखों ने बड़ी बारीकी से पीड़ापूर्वक निहारा और उसके मूल को टटोला था।

दादू की भक्ति प्रेम भक्ति हैं। उनकी प्रणय साधना भक्ति के उन्नत सोपान पर पर्यवसित होती हैं। उनके मत से प्रेम भक्ति अनमोल है। जिसकी बराबरी न योग कर सकता है न ज्ञान। योग और ज्ञान दोनों अधूरे हैं, केवल भक्ति ही पूर्ण, सहज और रस से सिन्धु है। सत्य ही है, प्रभु

प्रेम में जिसकी अनन्य आसक्ति है उसके लिए शेष सभी कुछ तुच्छ हो जाता है। प्रेम ही उस ही उसक अलम्ब की जाति है, प्रेम ही उसका अंग है, प्रेम ही उसका अस्तित्व है और प्रेम ही उसका रंग है। उनकी प्रेम साधना का मूल भाव प्रेम विरह है जहां वियोगी उस गीली लकड़ी की तरह है जो न भभग के जल पाती है न बुझ पाती है। जब तक उसका अस्तित्व है वह निरन्तर घुटती और धुवांती है। विरह ही जीव को उसके परमप्रिय की ओर अग्रसर करता है—

दादू विरह जगाँवे दरद को, दरद जगाँवे जीव ।

जीव जगाँवे सुरति को, पंच पुकारै पीव ।।3

दादू का ध्येय समाज की सोच को बदलना और विकसित करना था। समाज जातीय भेद और वर्गीय भेद से परे होकर मूल्यों में जिये यही उनकी कामना थी। इस लक्ष्य के लिए वे बराबर प्रयत्नशील रहे। जाति पाति की कट्टरता की भवना हमारे देश में काफी पुरानी है। भारतीय इतिहास को गति व अगति देने में इस कट्टरता का विशेष योगदान रहा है। मध्यकाल में जाति और वर्ग की सीमाएं बहुत संकुचित और रूढ़ हो गयी थी। तत्कालीन समाज और आज के समाज की बनावट में यद्यपि काफी परिवर्तन आ गये हैं फिर भी बहुत सारी स्थितियाँ वैसी ही हैं। बल्कि हमारे समसामयिक समाज की कुछ विकृतियाँ तो आज और भी भयानक रूप धारण करती जा रही हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—“सादगी में जीवन व्यतीत करने वाले सन्तों का एक ऐसा क्रान्तिकारी वर्ग था जिसने सभी अत्याचारों एवं दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में अपना झंडा ऊंचा किया। इन संतों में अधिकतर निम्न जाति के लोग थे जो समाज और राज्य की तरफ से तिरस्कृत थे।

दादू की धारणा थी कि मानव-मानव के बीच जातीय अन्तर अमानवीय है। हिन्दू समाज में व्याप्त इस अमानवीय भाव के परिहार के लिए एवं अछूत वर्ग के स्वाभिमान को जागृत करने के लिए पर्याप्त प्रयास दादू ने किया है। उन्होंने तत्कालीन जड़वत जातीय व्यवस्था का विरोध किया, वे हिन्दू और मुसलमान दोनों में जातीय भेद को स्वीकार नहीं करते, जातीय भेद को भ्रम मानते हैं—

दादू दोन्यू भरम है, हिन्दू तुरक गंवार ।

जै दुहुवां थे रहित है, सो गहि तत्त विचार ।।

वे एक सच्चे साधक के रूप में सभी जातियों के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि सब उस प्रभु की जाति के ही हैं और उन्हीं के प्राणी हैं। अपनी अपनी जाति सो, सबको वैसी पाति । दादू सेवग राम का, ताके नहीं अराति ।। चोर अन्यायी मसकरा, सब मिली बैसे पाति । दादू सेवग राम का, तिनि सौं करै भराति ।।6

जाति-पाति की व्यवस्था को तोड़ने के लिए दादू जी ने जो कदम उठाया, वह आज हमारे लिए अत्यन्त प्रासंगिक है। ऊँच-नीच व्यवस्था ने ही लाखों लोगों को उनके सामान्य अधिकारों से वंचित कर रखा था तथा नीची जाति वालों को पशुओं से भी हेय और घृणित जीवन बिताने के लिए मजबूर

कर दिया था । वह स्थिति आज भी बहुत कुछ वैसी ही है । उच्च-नीच, हिन्दू-मुसलमान सभी को भक्ति का पूर्ण अधिकार है, वह तो इस भेदभाव को समाप्त करके मानव मात्र की एकता चाहते थे । दार्शनिक वाद-विवाद और मतभेद का भी उन्होंने खण्डन किया है —

**‘दादू न हम हिन्दू होहिंगे न हम मुसलमान ।
षट् दर्शन में हम नहीं, हम राते रहिमान ॥**

दादू जी की मान्यता है कि सच्चे सन्तों की भी एकही जाति होती है —

**जे पहुँचे ते कहि गये, तिन की एकै बात ।
सर्व सयाने एकमति, तिनकी एकै जात ॥**

वर्ग भेद और जाति भेद का जो घुन समाज को अन्दर ही अन्दर चाट रहा था । उन्होंने उसे निर्मूल करने का प्रयास किया है । उनका यह प्रयास आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना तब था । “उदात्त मानवीय संवेदना से अनुप्राणित होने के कारण उन्होंने अपनी जाति की हीनता ग्रंथि को उखाड़ फेंकने के लिए जिस शक्ति, सौन्दर्य तथा अदम्य साहस का परिचय दिया, वह अभिनन्दनीय है । सारे समाज से उपेक्षित होकर भी वे उपेक्षित न रहे ।

दादू का ऊँच-नीच, जाति-पाति के भेदभाव की खाई को पाटना का प्रयत्न भारतीय समाज में आज भी ऐतिहासिक महत्त्व रखता है । जिस मार्ग को आज कानून ने अपनाया है उन्होंने उसे उसी युग में अपना लिया था ।

जब व्यक्ति सामुदायिक भेद-भाव से ऊपर उठ जाता है और उसके हृदय में समत्व की भावना आ जाती है तो उसके सन्देश स्वयमेव दूर हो जाते हैं और वह गीता के अर्जुन की तरह कह उठता है, “अलह राम छूटा भ्रम मोरा ।”

नष्टो मोहः स्मृति लब्धा त्वप्रसान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसदेहः करिष्ये वचनं तव ॥

जो लोग हिन्दू-मुसलमान अथवा राम-रहीम में भेद करते हैं । दादू जी उनसे सहमत नहीं हैं, वह कहते हैं कि सच्चा साधू तो इन सबसे ऊपर होता है । उन्होंने मानवमात्र की एकता पर बल दिया । वे न तो हिन्दुओं से घृणा करते थे न ही मुसलमानों से । अपितु दोनों की एकता को स्थापित करना चाहते थे । डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने ठीक कहा है — “उस समय की यह स्पष्ट मांग थी कि हिन्दू और मुसलमान अड़ोसी-पड़ोसी की भाँति प्रेम और शांति से रहे ।... दोनों जातियों के दूरदर्शी विरक्त महात्माओं को जिन्हें जातीय पक्षपात छू नहीं गया था, जिनकी दृष्टि तत्काल के हानि-लाभ, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से परे की जा सकती थी, इस आवश्यकता की सबसे तीव्र अनुभव हुआ । 11 साम्प्रदायिक भेदभाव एवं धार्मिक कट्टरता का उन्होंने विरोध किया

है । धार्मिक एकता का प्रतिपादन करते हुए दादूजी ने लिखा है —

सब हम देख्या सोधि कर दूजा नहिं आन ।

सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान ॥

हिन्दू अपने मार्ग को श्रेष्ठ घोषित करते थे तो मुसलमान अपने मार्ग को । वास्तव में दोनों को ही सच्चे पथ की पहचान नहीं थी। हिन्दूओं में अवतारवाद की भावना घर कर चुकी थी । संत दादू का यह विचार था कि रक्त मांस के रूप में जन्म लेने वाला कोई भी भौतिक शरीर परमात्मा नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त ईश्वर को देह-धारण करने की आवश्यकता ही क्या है? ईश्वर विश्वास की सात्विक भावना से जन्मा अवतारवाद वैमनस्य का कारण बन चुका था । अवतारवाद के साथ ही पूजा के नाना विधान और उनका आडम्बर भी तत्कालीन धर्म को दूषित किए हुए था जिसके परिणामस्वरूप,

दादू ने अवतारवाद का विरोध किया । आज का युग भी जबकि जनता जागृत हो रही है, इन आडम्बरों से पूर्णतया मुक्त नहीं है । डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल लिखते हैं — “अवतार विरोध का एक प्रबल कारण यह भी हो सकता है कि उनके द्वारा नर-पूजा का विधान होने के कारण धर्म में पाखण्ड घुसने का मार्ग मिल जाता है ।”

दादू ने युग की आवश्यकतानुसार हिन्दू और मुसलमान दोनों को एकेश्वरवाद का सन्देश सुनाया क्योंकि हिन्दू वेदान्त के अद्वैतवादी सिद्धान्त से परिचित होने पर भी बहुदेववादी हो रहे थे । उन्होंने कहा यह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक परब्रह्म परमेश्वर किसी एक स्थान विशेष पर आबद्ध नहीं । विभिन्न सम्प्रदाय वालों ने उसे अपने मन्दिर-मस्जिदों या तीर्थों में बाँधने का व्यर्थ प्रयत्न किया है । गुण-अवगुण से रहित वह ब्रह्म अजर, अमर, अगाध, अलक्ष्य, निराकार, वर्णनहीन व सबका नियामक है । संत दादू ने अपनी विनम्र उक्ति से उसी अभेदत्व की ओर संकेत किया है —

बाबा नाहीं दूजा, कोई, येक अनेक, नांउ तुम्हारें, मौपैं और न होई ॥

अलष इलाहौ एक तू तू हीं राम रहीम ।

तू हीं मालिक मोहन, कैसी नांउ रहीम ॥14

उन्होंने कहा मन्दिर अनावश्यक है, मन्दिरों में रखी मूर्तियाँ झूठी हैं, वो देवता व्यर्थ हैं, उनकी माया झूठी है, उनके पूजने वाले व्यक्ति भी भ्रम फैलाने वाले हैं । अन्ध विश्वास फैलाने वालों ने ही भगवान को मन्दिर-मस्जिद व मूर्तियों तक सीमित कर दिया है ।

तत्कालीन समाज के लिए और वर्तमान के लिए भी ईश्वर की आराधना का सरल उपाय और नहीं हो सकता था जो संत दादू ने दर्शाया है ।

तदयुगीन समाज आडम्बर एवं बाह्य प्रदर्शन की प्रधानता से युक्त था । वाचक, ज्ञानी एवं भगवा वस्त्र-धारी लोग समाज पर छाये हुए थे । सच्चे सन्तों एवं साधकों तक की और लोगों का ध्यान नहीं जा पाता था । संत दादू ने बाह्यचारों एवं आडम्बरों का जमकर खण्डन किया है । उन्होंने मांसाहारी मुसलमानों को निष्ठुर, कपटी, अचेत व कुकर्मी कहा है । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि बकरे का गला काटते समय, कलमा पढ़ लेने से क्या वह मांस पवित्र बन सकता है? जब यकीन और ईमान ही साबुत नहीं हैं तो पांच बार नमाज पढ़ लेने से क्या लाभ? धर्म के नाम पर होने वाली कुर्बानी की निर्दयता ईश्वर सापेक्ष नहीं हो सकती । दादू गम्भीर चित्त से उसक खोखलेपन एवं व्यर्थता का जनता के बीच खुलासा करते हैं । सर्वत्र आडम्बर, अन्धविश्वास धर्म के अंग बनते जा रहे थे

। सामाजिक जीवन बाह्याडम्बरों द्वारा अधोगति की तरफ जा रहा था पण्डित, मुल्ला, धर्म स्वांगियों ने जनता को गुमराह ही किया है । वे वर्चस्व जमाने के लिए पद्धतियों का सहारा लेते हैं, ऐसे पाखण्डी लोगों की असलियत से वे आम जनता को परिचित कराकर भेदपरक वातावरण को मिटाने का संकल्प करते हैं । धार्मिक पाखण्ड के प्रति उनका विचार है —

दादू सोभा कारणि सब करै रोजा वेगनवाज,

मूवा न एकै आहि सोजे तुझ साहिब सेती काज ॥

निर्गुणवाद में विश्वास रखने के कारण दादू ने प्रतिमा पूजन का विरोध किया है । दादू जी ने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहा है कि कंकर पत्थरों की पूजा से मनुष्य नष्ट हो जाता है —

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गंवाई ।

अलख देव अंतरिब से, क्या दूजी जगह जाई ॥”

मूर्ति पूजा के विरोध के साथ केवल

पुस्तकीय ज्ञान की भी उन्होंने निन्दा की है। उनके विचारानुसार प्रियतम के प्रेम को पढ़ने वाला बिरला ही हुआ करता है। पंडित लोग पढ़ते-पढ़ते थक गये परन्तु पार न पा सके। कागज काले कर-कर के कई तो मर जाते हैं। प्रेम के अभाव में शास्त्र एवं ग्रन्थों का अध्ययन निरर्थक सिद्ध होता है—

**दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचे कोइ
वेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ।**

संत कवियों से पहले नाथपंथी योगियों ने भी छापा-तिलक, वेशभूषा आदि बाह्यचारों का खण्डन किया था। परन्तु दादू ने समस्त बाह्यचारों एवं निरर्थक क्रियाओं का स्पष्ट विरोध किया है। भगवान की उपलब्धि में बाहरी साज-सज्जा एक जबरदस्त बाधा उत्पन्न करता है। विभिन्न वेश धारण करके पाखण्डी लोग किस प्रकार भोली जनता को ठगते हैं इसका चित्रण करते हुए दादू जी लिखते हैं—

**कृष्ण गाड़ि आसन तले, दीपक धरि ढकि मांहि ।
लोकन कूँ कहि रात कूँ, ब्रह्म जोति दरसाहिं ॥118**

साधारणतया लोग माला, मुद्रा आदि से बाहरी भेष बनाकर, दूसरों को उपदेश देते हैं परन्तु उनको स्वयं कोई ज्ञान नहीं होता। दादू अपने मन के अन्दर निवास करने वाले पारब्रह्म को अच्छी तरह जानते थे। माला और तिलक से वे कोसों दूर थे। वे इस पचड़े में पड़ना ही नहीं चाहते थे। वह कहते हैं कि केवल सिर मुंडाने से कोई योगी नहीं बन सकता। बाह्यचारों का खण्डन भी उन्होंने स्थान-स्थान पर किया है—

**दादू माया कारण मूंड मुंडाया, यहू तो जोगन होई ।
पारब्रह्म सूँ परचा नाहीं कपट न सीझै कोई ॥**

**जोगी जंगम सेवड़े बोध सन्यासी सेख ।
षट दर्शन दादू रामबिन, सबै कपट के भेष ॥**

तत्कालीन समाज में प्रसिद्ध हिन्दुओं की तीर्थाटन तथा मुसलमानों की हज यात्रा का भी दादू ने डटकर विरोध किया है। दोनों ही धर्मों के लोग अपने-अपने पवित्र धार्मिक स्थलों की यात्रा करके, वहाँ स्नान करके अपने आपको पापनिवृत्त समझने लगे थे। जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, केवल तीर्थ स्थानों तक ही सीमित नहीं है तो वहाँ भटकने की आवश्यकता ही क्या है? जो व्यर्थ तीर्थयात्रा को जाते हैं ऐसों का दादू कहते हैं कि शरीर के अगणित कर्मों को धोने के लिए तुम पवित्र तीर्थ स्थानों पर जाया करते हो, किन्तु जो कर्म तुम वहाँ करते हो उसे कहीं धोओगे? दादू जी तीर्थों की महत्ता को

सन्दर्भ :-

1. डॉ. दशरथ ओझा, समीक्षा शास्त्र, पृ. 11
2. डॉ. गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ. 7
3. संत काव्य, पृ. 292
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, पृ. 216
5. परशुराम चतुर्वेदी, दादू दयाल ग्रंथावली, पृ. 161
6. स्वामी मंगल दास, श्री स्वामी दादू दयाल जी की अनमै वाणी, पृ. 271
7. स्वामी मंगल दास, दादू वाणी, पृ. 317
8. स्वामी मंगल दास, दादू वाणी, पृ. 282
9. सं. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, युग प्रवर्तक संत गुरु रविदास, पृ. 107
10. गीता 18, 73
11. सं. पीताम्बर दत्त बड़थवाल, हिन्दू काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ. 15
12. मंगल दास, दादू वाणी, पृ. 421
13. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ. 221
14. चन्द्रिका प्रसाद, दादूवाणी, पृ. 455
15. परशुराम चतुर्वेदी, दादू दयाल ग्रंथावली, पृ. 152
16. स्वामी मंगलदास, दादू वाणी, पृ. 274
17. दादू दयाल की बानी, भाग-1, पृ. 41
18. लेख 'युग प्रवर्तक महात्मा दादू' श्री रामदेव चौखानी, श्री दादू चतुः शताब्दी निबन्ध माला से उद्धृत, पृ. 19
19. स्वामी मंगल दास, दादू वाणी, पृ. 286-87
20. संत सुधासार, पृ. 481
21. डॉ. केशनी प्रसाद चौरसिया, मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना, पृ. 198

स्वीकार नहीं करते। वह कहते हैं कि लोग कितने मूर्ख हैं जो अंतर्दामी ईश्वर को ढूँढने द्वारिका, काशी और मथुरा जाते हैं —

**दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जाहि ।
केई मथुरा काँ चले, साहिब घट ही मांहि ॥20**

संत दादू ने विशुद्ध आचरण पर बल दिया उनके काव्य का पठन पाठन करने से ज्ञात होता है कि तीर्थ स्थानों में उनका कोई विश्वास न था। उन्होंने समस्त ब्राह्मजडम्बरों का विरोध करते हुए उन्होंने कहा कि व्यक्ति की कथनी और करनी में जितना अधिक सामंजस्य होता है, वह सामाजिक दृष्टि से उतना ही श्रेष्ठ व सफल पाया जाता है। श्रेष्ठ वही होता है जो स्पष्ट कहे और उस कहे को क्रियान्वित करे। गोस्वामी तुलसीदास ने भी यही बात कही है — 'पर उपदेस कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे। (रामचरितमानस) उन्होंने कथनी व करनी के सामंजस्य पर अधिक बल दिया।

दादू दयाल मानवतावादी थे। उनके प्रत्येक सुधार और साधना का लक्ष्य व्यक्ति था। अतः व्यक्ति ही उनकी सहज साधना की धुरी है। समस्त बाह्यचारों, शास्त्र और शास्त्रवाद तथा अवतारवाद का विरोध उन्होंने इसलिए किया ताकि व्यक्ति-व्यक्ति से जुड़ सकें। डॉ. केशनी प्रसाद चौरसिया ने उचित ही लिखा है — निःसन्देह नानक ने कबीर के द्वारा जलाई गई एकता की मसाल को बड़े उत्तरदायित्व के साथ अपने हाथ में लिया तथा दादू दयाल ने उसे ग्रहण कर उसके प्रकाश में किसी प्रकार की कमी नहीं आने दी। प्रकारान्तर से एकता के जिस भवन का शिलान्यास कबीर ने किया, उस पर भवन निर्माण का कार्य नानक और दादू के द्वारा सम्पन्न किया गया है।

आज की तथाकथित प्रजातांत्रिक प्रणाली में 'वोट' की राजनीति के कारण नई-नई सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। जिनका मिला-जुला परिणाम हमारे सामने है। जातिवाद का नंगा नाच, धार्मिकता-अधार्मिकता का सवाल, भौतिक सुखों को पाने की अमानवीय प्रतिस्पर्धा और उसी के समानान्तर चलने वाले देशी-विदेशी संस्थाओं के कुचक्रों ने आज पुनः भारतीय समाज को विघटन के कगार पर लाकर पटक दिया है। इस विषम स्थिति में सहारे की खोज में जब अतीत की और दृष्टि जाती है तो उस समय दादू दयाल का व्यक्तित्व ही मजबूत आधार के रूप में हमें दिखाई देता है। धर्म और विभिन्न संप्रदायों के संदर्भ में दादू दयाल जितने उस समय प्रासंगिक थे, आज भी उतने ही या शायद उससे भी अधिक प्रासंगिक हैं।